Research Antiquity - A Reference Book of Historical Perspective
ISBN : 978-93-93166-08-1

वैदिक यज्ञ संस्था

डॉ. सुनील
पूर्व शोध छात्र,
प्राचीन भारतीय
इतिहास और पुरातत्व विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ,
उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

वैदिक धर्म 'यज्ञ' प्रधान धर्म है। कुछ विद्वानों ने 'यज्ञ संस्था' को वेद धर्म का प्राण और आत्मा माना है तो कुछ अन्य ने वैदिक संस्कृति का मेरुदंड। शतपथ ब्राह्मण ने इसे साक्षात ऐश्वर्य रूप; मैत्रायणी संहिता, कौषीतकि ब्राह्मण और गोपथ ब्राह्मण आदि ने पापों रोगों आदि का शोधक नाशक; तैत्तिरीय संहिता तथा ऐतरेय ब्राह्मण ने परलोक में स्वर्ग प्राप्ति का साधन एवं तैत्तिरीय ब्राह्मण ने अमरत्व का प्रापक कहा है। मैत्रायणी संहिता, शतपथ ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार यही श्रेष्ठतम कर्म है। गीता में कहा गया है कि इस सर्वोत्तम कामथुक् कर्म को प्रजापति ने सृष्टि के प्रारंभ में ही देवों और मनुष्यों के पारस्परिक श्रेयस के लिए उत्पन्न किया था।

यज्ञ शब्द यज् धातु तथा नङ् प्रत्यय से निष्पन्न है (येति इज्यते अनेन वा यत्र वा, यज् (देवपूजादौ)+ नङ्, वैदिक तत्सम मख)। यज धातु का प्रयोग पूजा या आराधना तथा हवन करने के अर्थ में होता है। वस्तुतः जिस विधान में देवताओं को हविष् दी जाती है अथवा जिसमें देवताओं की पूजा होती है उसे यज्ञ शब्द से अभिहित किया जाता है। अंग्रेजी में यज्ञ को 'SACRIFICE' कहा जाता है। SACRIFICE शब्द को लैटिन में 'SACRIFICE' कहते हैं जो कि लैटिन Sacer जिसका अर्थ अंग्रेजी में

Holy (संस्कृत में पवित्र) तथा लैटिन Facere जिसको अंग्रेजी में To make (संस्कृत में अनुष्ठान) कहते हैं, से मिलकर बना है। यह Sacrificium शब्द उस विधान का बोध कराता है जो किसी वस्तु के च्युत हो जाने पर अथवा उसके नष्ट हो जाने पर किया जाता है और जिसका उद्देश्य देवी शक्ति के साधन तथा उसको प्राप्त करने वाले अर्थात साधक के बीच संबंध स्थापित करना है।

शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ का निर्वाचन करते हुए कहा गया है कि विस्तारित विकसित किया जाता हुआ जो उत्पन्न होता है वह यज्ञ है। यज्ञ के इसी उत्पत्तिपरक अर्थ को मुख्यतः मान्य करते हुए भारतीय वेदवेत्ता ही नहीं वरन आधुनिक पाश्चात्य वेदवेत्ता भी यज्ञ का मूल संबंध सतत क्रियाशील सृष्टि की उत्पत्ति विद्या से मानते हैं। उनके अनुसार यह विविध वैदिक यज्ञ वेद के अनुसार इस ब्रह्मांड और पिण्ड की रचना को वैज्ञानिक आधार पर प्रतीकात्मक शैली में समझाने के साधन हैं। अग्निचितियाग के विविध और विशद ब्राह्मण आख्यानों से भी यह प्रतीति होती है। वस्तुतः ये साधन क्रांतदर्शी ऋषियों ने कृतयुग और त्रेता के संधिकाल में वेद के आधि दैविक अर्थ को सुरक्षित रखने के लिए अपनाए थे।

'द्रव्य', 'देवता' और 'त्याग' इन तीनों से यज्ञ शब्द का अर्थ पूरा होता है। किसी द्रव्य का जब किसी देवता के उद्देश्य से त्याग किया जाता है तो उसे 'याग' अर्थात यज्ञ कहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में यज्ञ के अर्थ परोपकार, श्रेष्ठ धर्म और उत्तम कर्म आदि हैं। कुछ विद्वानों ने यज्ञ का वाच्यार्थ 'स्वार्थ-त्याग-पूर्वक-पूजन करना' किया है। यज्ञ संस्था के लिए वैदिक वाङ्मय में अनेकानेक पर्याय प्रयुक्त किए गए हैं जिनमें से निम्नलिखित प्रमुख हैं -

1. **अध्वर -** जहाँ वर्ष भर यज्ञ चलता है वहाँ पर अध्वर शब्द का प्रयोग होता है यथा चातुर्मास्य इष्टि अध्वर।

2. **मख** - जहाँ ग्रहों का प्रचार होता है वहाँ मख शब्द का प्रयोग होता है जैसे ग्रह याग।
3. **क्रतु** - यज्ञों के अंगभूत छोटे अथवा बड़े कर्मों को क्रतु कहते हैं। पाणिनि और पतंजलि आदि ने भी क्रतु शब्द यज्ञ के अर्थ में प्रयुक्त किया है।
4. **इष्टि** - यज्ञ का छोटा रूप इष्टि है। किन्ही किन्ही इष्टियों में ऋत्विजों की आवश्यकता ही नहीं पड़ती और यजमान अपनी पत्नी के साथ इष्टि को संपन्न कर लेता है।
5. **सवन** - ग्रह याग में जब सोमरस की आहुति दी जाती है तो उसे सोमयज्ञ या सवन कहते हैं।
6. **याग** - किसी देवता के निमित्त द्रव्य का त्याग ही यागहै।

उपासना काल के प्रारंभिक चरण में जबकि आर्य देवसत्ता, यज्ञीय कर्मकांड तथा चिंतन के गूढ़ तत्वों से सर्वथा अनभिज्ञ थे और अभी उसे अपने देवमंडल तथा उससे संबंधित विधि विधानों का निर्माण करना था, ऋग्वैदिक वैदिक आर्य जब बाह्य जगत के संपर्क में आया तो उसने प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को देखा और उनके स्वरूप का दर्शन किया। उनमें से कुछ से वह लाभान्वित हुआ, कुछ से भयभीत हुआ, कुछ को देखकर आश्चर्यचकित हो गया। वस्तुतः प्रकृति के सभी रूपों ने उसे प्रभावित किया और उन्होंने सभी प्राकृतिक शक्तियों को देवत्व प्रदान किया। प्रकृति की विभिन्न शक्तियाँ उसके लिए इंद्र, वरुण, सूर्य, चंद्र, मरुत, वायु, पर्जन्य और उषा आदि देवता और देवी बन गईं।

इन विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों अथवा प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक स्वरूपी देवताओं के क्रोध से बचने के लिए तथा उनसे लौकिक सुखों की प्राप्ति के लिए वैदिक आर्यों ने इनकी स्तुति और आराधना हेतु ऋचाओं और

मंत्रों की रचना की। वस्तुतः ऋग्वैदिक आर्य नितांत प्रवृत्तिमार्गी था। उसके जीवन में संन्यास व गृहत्याग का स्थान न था। वह गृहस्थाश्रम में ही देवोपासना एवं देव-भजन द्वारा कल्याण प्राप्ति की चेष्टा करता था। वह अपने देवताओं से मोक्ष नहीं माँगता था। ऋग्वेद की देव स्तुति में

स्थान-स्थान पर शतवर्षीय आयु, पुत्र, धन-धान्य, विजय आदि की कामना दृष्टिगोचर होती है। ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि 'भगवान जीवन यात्रा में हमें समुन्नत कीजिए।' एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि 'कल्याणमय जीवन व्यतीत करते हुए हम वृद्धावस्था को प्राप्त हों।' ऋग्वैदिक आर्यों की उपर्युक्त कामनाओं से प्रकट होता है कि उनमें न तो पलायनवाद था और ना ही मोक्ष प्राप्त की आतुरता। उन्हें ऐहिक जीवन से ही अनुराग था।

आर्यों की कल्पना शक्ति ने धीरे-धीरे इस विश्वास को जन्म दिया कि देवता भी मनुष्यों की भांति उपहार आदि देकर प्रसन्न और संतुष्ट किए जा सकते हैं। अपने प्रिय पदार्थों को देवताओं तक पहुँचाने के माध्यम के रूप में उन्होंने अग्नि का आश्रय लिया क्योंकि उनका विश्वास था कि अग्नि देवताओं का मुख है जिसके माध्यम से वे हवि द्रव्यों को ग्रहण करते हैं। इस प्रकार घृत, दुग्ध सोम, अन्न आदि की आहुति अग्नि में देकर और अग्नि की उत्तुंग ज्वाला और उत्तुंग धूम्र राशि के द्वारा हव्यों को देवताओं तक पहुँचाने के विश्वास ने ही याज्ञिक कर्मकांडों को जन्म दिया। वैदिक साहित्य में भी यज्ञ का जो स्वरूप वर्णित है उसके अंतर्गत अग्नि के माध्यम से अपने इष्ट देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उसे जो वस्तुएँ इष्ट हैं, उन्हें प्रदान करने का भाव निहित है यथा ऋग्वेद में कहा गया है कि 'यजमान के जिस द्रव्य का होता हवन करते हैं, वह द्रव्य देवताओं को प्राप्त होता है।'

अपने प्रादुर्भाव काल में यज्ञ अत्यंत साधारण कोटि के थे। यज्ञवेदी

में अग्नि प्रज्ज्वलित करके कोई भी व्यक्ति मंत्रोच्चारण के साथ अपने इष्ट देव को आहुतियाँ प्रदान कर सकता था परंतु कालांतर में जटिल याज्ञिक कर्मकांड अस्तित्व में आने लगे जबकि व्यक्ति स्वयं यज्ञ संपन्न नहीं कर सकता था अपितु इसके लिए पुरोहितों की आवश्यकता पड़ने लगी। स्वयं ऋग्वेद में ही कुछ व्रत एवं व्ययात्मक यज्ञों का उल्लेख प्राप्त होता है। सोम यज्ञ इसी कोटि में आते थे जिसमें तीन-तीन वेदियाँ, तीन-तीन अग्नियाँ और बहुसंख्यक पुजारियों के अतिरिक्त चार प्रमुख ऋत्विजों की आवश्यकता पड़ती थी।

ऋग्वैदिक काल के विपरीत उत्तर वैदिक काल में आर्यों ने याज्ञिक विधाओं के विकास में अपनी वैज्ञानिक मनोवृत्ति का परिचय दिया। फलतः उत्तर वैदिक काल में यज्ञों का स्वरूप एवं अनुष्ठान विधियाँ जटिल हो गईं। यज्ञवेदी की रचना किस प्रकार की जाए, वेदी में अग्नि कैसे प्रज्वलित की जाए, किस ढंग से आहुति दी जाए, यज्ञ करते समय यजमान किस दिशा में बैठे और पुरोहित किस दिशा में, वे अपने अंगों को किस प्रकार उठाएँ तथा किस प्रकार मंत्रोच्चारण करें, किन पदार्थों की आहुतियाँ दी जाएँ आदि अनेकानेक विषयों का ब्राह्मण ग्रंथों में बड़े विस्तार से विवेचन किया गया है। याज्ञिक धारणाओं के विकास क्रम में उत्तर वैदिक काल में उल्लेखनीय परिवर्तन यह हुआ कि ऋग्वैदिक काल के विपरीत जबकि अपने आराध्य को प्रसन्न करने एवं मनोवांछित कामना पूर्ति के लिए उससे प्रार्थना करता था तथा अग्नि के माध्यम से उसे इष्ट वस्तुएँ भेंट करता था; अब आर्यों की मनोवृत्ति को आभास होने लगा कि तेज की, ब्रह्मवर्चस की, स्वर्ग की, यश की, सांसारिक ऐश्वर्य की, सुखभोग, पुत्रादि की प्राप्ति देवताओं की कृपा पर उतनी निर्भर नहीं है जितनी पुरोहितों द्वारा ठीक प्रकार से यज्ञों के अनुष्ठान से। उनकी यह धारणा हो गई कि ठीक अवसरों पर मंत्रों के ठीक उच्चारण द्वारा

ISBN : 978-93-93166-08-1

देवताओं को वश में किया जा सकता है और उन्हें यज्ञकर्ता को अभीष्ट फल देने के लिए बाध्य किया जा सकता है। वास्तव में उत्तर वैदिक काल में यज्ञों ने ऐसा गौरव प्राप्त कर लिया था और उनकी महत्ता इतनी बढ़ गई थी कि वह फल के साधन नहीं, स्वयं इच्छित परिणाम बन गए थे।

वैदिक यज्ञों को निम्नलिखित दो प्रमुख वर्गों में विभक्त किया जा सकता है

1. **गृह यज्ञ -** गृह्याग्नि में क्रियमाण यज्ञ पाक यज्ञ के नाम से अभिहित होते हैं जिनकी संख्या सात है।
2. **श्रौत यज्ञ -** श्रौत यज्ञ के निम्नलिखित दो भेद हैं -
3. हविर्यज्ञ, जिनकी संख्या सात है।
4. सोमयज्ञ, जिनकी संख्या सात है।

प्रथम श्रेणी के यज्ञों का वर्णन गृहसूत्रों में हैं और द्वितीय श्रेणी के यज्ञों का वर्णन श्रौतसूत्रों में है।

यथा विधि दीक्षित होने पर ही श्रौतयज्ञ का अधिकारी मनुष्य होता है परंतु केवल उपनीत होने पर ही गृहयज्ञ का अधिकारी मनुष्य हो जाता है।

इस प्रकार वैदिक यज्ञों की कुल इक्कीस संस्थाएँ हैं जिनमें सप्त पाक संस्थाएँ, सप्त हविर्यज्ञ संस्थाएँ और सप्त सोम संस्थाएँ हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है -

1. सप्त पाक यज्ञ संस्थाएँ -
2. औपासन होम - सायंकाल तथा प्रातःकाल दधिमिश्रित चावलों का हाथ से संपन्न किया जाने वाले होम को औपासन होम कहते हैं।
3. वैश्वदेव कर्म - इसे पंचमहायाग भी कहते हैं जिसमें देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्य यज्ञ और ब्रह्मयज्ञ सम्मिलित हैं।
4. पार्वण कर्म - अमावस्या और पूर्णिमा पर किए जाने वाले कर्म पार्वण कहे जाते हैं।

ISBN : 978-93-93166-08-1

5. अष्टकाश्राद्ध - हेमन्त और शिशिर की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को संपन्न किया जाता है।
6. मासिकश्राद्ध - प्रतिमास किए जाने वाले श्राद्ध मासिक श्राद्ध हैं।
7. श्रवणाकर्म - सर्पों के लिए संपादित होने वाला बलिकर्म है।
8. शूलगव इसे ईशानबलि भी कहते हैं।
9. श्रौताग्नि की संस्था -

सप्तहविर्यज्ञ संस्था -

1. अग्न्याधेय - गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि तथा आहवनीय अग्नियों की उत्पत्ति के लिए अंगारों का निधान ही अग्न्याधान है।
2. अग्निहोत्र - सायंकाल तथा प्रातःकाल विहित हविष् का अग्नि में होम ही अग्निहोत्र है।
3. दर्श-पूर्णमास याग - पौर्णमास इष्टि के पश्चात दर्श इष्टि संपन्न की जाती थी।
4. चातुर्मास्य याग - इसके अंतर्गत वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेघ और शुनासीरीय चार पर्व सम्मिलित हैं।
5. आग्रयण - नवान्न के उत्पन्न होने पर संपादित किया जाता है।
6. निरुढ़ पशुबंध - पशुओं की प्राप्ति के निमित किया जाता है।
7. सौत्रामणी यज्ञ - सोमातिपावित व्यक्ति इसे कभी भी अनुष्ठित कर सकता है।

सप्तसोमयज्ञ संस्था -

1. अग्निष्टोम - इसमें अग्नि की स्तुति की जाती है।
2. उक्थ्य - सोम का उत्थापन होने से इसे उक्थ कहा जाता है।
3. षोडशी - इसमें षोडश स्तोत्र और शस्त्र होते हैं।
4. अतिरात्र - इसमें अतिरात्र संज्ञक सामों का गान होता है।

5. अत्यग्निष्टोम - इसमें अग्निष्टोम स्तोत्र के अनन्तर तीन उक्थ्य स्तोत्रों को किए बिना षोडशी स्तोत्र तथा शस्त्रादि का प्रचार करते हैं।
6. वाजपेय संस्था - इसमें वाजपेय संज्ञक एक स्तोत्र का पाठ होता है।
7. आप्तोर्याम संस्था - इसके द्वारा अभिकांक्षित वस्तु प्राप्त होती है।

प्रत्येक यज्ञ के मुख्य 'देवता' भिन्न-भिन्न और एक अथवा अनेक होते हैं। 'मंत्र' और 'हवि' का प्रयोग देवता के अनुरूप ही किया जाता है। यज्ञ सम्पादन पर यजमान द्वारा पुरोहितों को दी जाने वाली 'दक्षिणा' यज्ञ का ही अंग है। सामान्यतः यज्ञ में होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा चार ऋत्विक होते हैं।

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि यजमान को अपनी सामर्थ्य के अनुसार जो संभव हो देना चाहिए परन्तु यज्ञ बिना दक्षिणा के नहीं रहना चाहिए।

प्रादुर्भाव काल से ही यज्ञ संस्था को पर्याप्त महत्व प्राप्त होने लग गया था। ऋग्वेद में यज्ञ को सुखदायी, कल्याणकारी, अविनाशी तथा शत्रुओं से मुक्ति प्रदान करने वाला कहा गया है। यजुर्वेद में यज्ञ को स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाला, वृष्टि रूपी फल का उत्पादक, ब्रह्मा को वश में करने वाला तथा सब लोकों की नाभि; सामवेद में देवताओं का आह्वान करने वाला तथा अथर्ववेद में ज्ञानदायक, मनोरथों अथवा अभीष्टों को पूर्ण करने वाला तथा संसार का उत्पत्ति स्थल कहा गया है। ब्राह्मण काल में यज्ञों की महत्ता में अत्यधिक वृद्धि हुई। ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञ द्वारा देवताओं के बाध्य होकर मनुष्यों को मनोनुकूल वर प्रदान करने के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

किंतु यज्ञ संस्था की उपर्युक्त अपरिमित महत्ता के विपरीत उनके उत्पत्ति काल से ही तत्कालीन समाज में एक वर्ग याज्ञिक अनुष्ठानों को परम श्रेय की प्राप्ति के लिए पर्याप्त नहीं मानता था। ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि इंद्र के प्रति की गई स्तुति, घृत अथवा मधु की अपेक्षा अधिक

मधुर होती है। आरण्यक साहित्य में यज्ञों के संबंध में परस्पर विरोधाभास मिलता है। आत्मसिद्धि के लिए यज्ञों को अत्यावश्यक बताया गया है तो यह भी कहा गया है कि केवल यज्ञों के आयोजन मात्र से मोक्ष प्राप्त नहीं होता है। वस्तुतः आरण्यक काल में यज्ञ से संबंधित बाह्य आडंबरों के स्थान पर संयम और त्याग को अधिक महत्व दिया गया। मुण्डकोपनिषद की यज्ञ संबंधी आलोचना के बाद भी उपनिषद काल में यज्ञ संस्था का महत्व बना रहा। छान्दोग्योपनिषद में कहा गया है कि यथाशक्ति यज्ञ न करने वाला असुर है। वृहदारण्यकोपनिषद में कहा गया है कि यजमान प्रज्ज्वलित होने वाली आहुतियों द्वारा देवलोक को, शब्दावान आहुतियों द्वारा पितृलोक को और पृथ्वी पर ही लीन हो जाने वाली आहुतियों के द्वारा मनुष्य लोक को जीत लेता है। इस प्रकार वैदिककाल में यज्ञ संस्था समाज में पूर्णतः प्रतिष्ठित थी। वैदिक यज्ञों के लघु रूप यथा हवन, तर्पण आदि आज भी प्रचलित हैं। वस्तुतः जीवन स्वयं एक यज्ञ है, इसे 'आत्मयज्ञ' कहा गया है।